IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

# डॉ० विप्रसाद सिंह के व्यक्तित्व की एक झलक

डॉ० अनिल कुमार

प्रभारी प्रधानाध्यापक

उत्क्रमित उच्च विद्यालय,चाँदडीह,देवघर

डॉ० वि"वप्रसाद सिंह के व्यक्तित्व की विराटता को भाब्दों में नहीं बाँधी जा सकती है। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था । वे हिन्दी साहित्य मंजुशा के दैदीप्यमान रत्न थे। वे मानवतावादी विचारधारा के सर्वश्रेश्ठ समीक्षक, साहित्येतिहास के भाोध–कर्ता एवं व्याख्याता, ललित निबंधकार, भारतीय संस्कृति के प्राणवान संदे"वाहक, अप्रतिम कथा वि"ल्पी, सिद्ध संपादक, सहज साधक, कु"ल उपन्यसकार, सफल अध्यापक और उदारमना साहित्यकार थे।

डॉ० वि"वप्रसाद सिंह का व्यक्तित्व अत्यंत गंभीर एवं विद्वतापूर्ण था। इतिहास, ज्योतिश, साहित्य"ास्त्र, समाज"ास्त्र, भाशा विज्ञान, द"र्न"ास्त्र आदि में उनकी वि"ोश रूचि थी। वे साहित्य सृजन से लेकर आलोचना तक हिन्दी साहित्य में लगभग पाँच द"ाकों तक छाये रहे। विनम्र, स्पश्टवादी, संघश"ील, संवेदन"ील, अध्ययन"ील आदि वि"वप्रसाद जी के व्यक्तित्व के प्रमुख गुण थे। अपनी स्पश्टवादिता के लिए वे जाने जाते थे। साहित्य हो या प्रजातंत्र, दो एक बातें कहना उनकी आदत थी। अपनी बात कहने के लिए वे कभी किसी से नहीं डरे।

प्रख्यात साहित्यकार डॉ० वि"वप्रसाद सिंह का जन्म 19 अगस्त सन् 1928 को उत्तर प्रदे"ा के वाराणसी जनपद में जलालपुर ग्राम के एक सभ्रान्त मध्यवर्गीय कृशक परिवार में हुआ था। यह गाँव वाराणसी जिले में, गाजीपुर जिले की सीमा से एकदम लगा हुआ है और इसका प्रसिद्ध कस्बा जमानियाँ गाजीपुर जिले में पड़ता है। जमानियाँ क्षेत्र के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व को देखते हुए तथा राश्ट्रीय स्वतुत्रता आंदोलन के क्षोभ एवं विद्रोह से भरे हुए परिवे"ा के कारण यह कहा जा सकता है कि उनके व्यक्तित्व विकास में काल एवं स्थान का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

डॉ० ि"ावप्रसाद सिंह जी की योग्याता से प्रभावित होकर सन् 1956 में उन्हें का"ाी हिन्दू वि"वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक के पद पर नियुक्त किया गया। इस संस्था से वे अवका"ा प्राप्ति तक जुड़े रहे। सन् 1967 में वे रीडर के पद पर अलंकृत हुए। वे विद्यार्थियों में काफी लोकप्रिय रहे। उनके पांडित्य और गंभीर व्यक्तित्व की छाप विद्यार्थियों पर पड़ती रही। डॉ० ि"ावप्रसाद सिंह जी अपने गुरूतर कार्य में भी पयाप्त सफल रहे। व'विद्यार्थियों में खुब लोकप्रिय रहे एवं आदर के साथ सम्मानपूर्वक व्यापक एवं गंभीर अध्ययन, वाग्मिता तथा स्पश्ट एवं सरल प्रस्तुतीकरण के प्र"ांसक हैं।''[1]

भाोध निदे"ाक के रूप में डॉ० ि"ावप्रसाद सिंह को अच्छी ख्याति प्राप्त हुई। उनके यहाँ भाोधार्थियों की भीड़ लगी रहती थी। आव"यक नहीं था कि ये सभी भाोध छात्र उनके निर्दे"ान में ही पंजीकृत हो। उनके व्यापक अध्ययन, उदार व्यक्तित्व एवं सहयोगी प्रवृति के कारण सुझाव हेतु दूर–दूर से जिज्ञासु विद्यार्थी आते रहे। डॉ० कामे"वर सिंह गुरू ि"ाश्य के इन संबंधों का उल्लेख करते हुए लिखते हैं ''अपने गंभीर व्यक्तित्व के कारण ि"ावप्रसाद सिंह विद्यार्थियों से सभी प्रकार की सहानुभूति रखते हुए भी उनसे एक दूरी हमे"ाा कायम रखते हैं। संभवतः आप इस विचार के पोशक हैं कि भिक्षक एवं विद्यार्थी का संबंध भीत से ठिठुरते व्यक्ति और प्रज्वलित अग्नि के संबंध जैसा है। अग्नि के बिल्कुल समीप जाने में जल जाने का खतरा रहता है तो आव"यकता से अधिक दूरी रखने पर अप्रभावित रह जाने की निरर्थकता।''[2]

डॉ० ि"ावप्रसाद सिंह के प्रथम द"ार्न में ही उनका धीरे गंभीर व्यक्तित्व अमित छाप छोड़ जाता था। उनके साहित्यिक मित्र, समीक्षक तथा ि"ाश्य उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाते थे। डॉ० राजेंद्र खैंरनार जी उनके व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए लिखते हैं– ''पक्का गेंहुँआ रंग, कलीन भोव्ड चहरा, तीखी नाक और काफी बड़ी–बड़ी आँखें'' देखते ही किसपर प्रभाव नहीं पड़ेगा जहाँ एक ओर उनके सिंह सी छाती, हस्ती भाुंड सा भुजदंड, साधारण व्यक्ति की आँखां से दो गुना बड़ी आँखें तथा उन्नत ललाट से राजेंद्र प्रसाद पांडेय प्रभावित थे तो दूसरी ओर उनके चौड़े कंधे, लंबा कद, मजबूत काठी गेहुँआ रंग, सुद"ार्न चहरा, आस्था की दृढ़ता और आत्मीयता से छलकती आँखें देखकर जगदी"ाप्रसाद श्रीवास्तव अत्यंत प्रभावित थे। रूपसिंह चंदेल उनके व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए लिखते हैं– ''उनका भारीर भव्य, आँखें बड़ी... यदि अतीत में जाएँ तो हम कह सकते हैं कि कुणाल पक्षी जैसी सुंदर, ललाट चौड़ा चेहरा बड़ और पान से रंगे होठ सदव गुलाबी रहते थे।''[3]

उनके निवास स्थान पर पहुँचते ही उनकी एकांतप्रियता और सहज–सरल जीवन की स्पश्ट झलक देखने को मिलते थी। डॉ० विवेकी राय के भाब्दों में ''बाहर कोई नहीं था। जीती–जागती फुलवारी थी। किन्तु यह समुदाय डॉ० सिंह की रूचियों का पता भर बता सकते थे। हैं– नहीं हैं अथवा 'कुत्ते से सावधान' लिखी तख्तियाँ नहीं थीं, कालवेल भी नहीं। बस इत्मीनान से नील गगन में पंख पसारे उड़ते से महल की छाया में क्षणभर खड़े होकर किसी के बाहर निकलने की प्रतीक्षा की जा सकती थी।''[4]

कम बातें करना और किसी से कम मिलना जुलना उनके स्वभाव में भाामिल था। लोगों की यह आम f”ाकायत थी कि वे किसी से बहुत कम मिलते–जुलते थे। f”ावप्रसाद जी कहते हैं– ‘‘मैं अपने से किसी पर खुलता नहीं हूँ। यह मेरा स्वभाव है जबतक कोई खुद बातचीत भाुरू नहीं करता है मैं चुप ही रहता हूँ। भाायद इसीलिए लोग मुझे गैरमिलनसार मानते हैं।’’[5] हालाँकि जो लोग उनके संपर्क में आते थे उनको यह f”ाकायत उनसे नहीं होती थी। वे अपने बारे में फैले भ्रम का न तो खंडन करते थे और न ही ऐसी बातों से ज्यादा प्रभावित होते थे।

अध्ययन”ाीलता उनका नित्य कार्म था। समीक्षा हो या भाोध कार्य हो या सृजन कार्य हो सबमें अध्ययन अनिवार्य होता था। उनका भाोध साहित्य ‘कीर्तिलता अवहट्ट भाशा’ तथा ‘सूरपूर्व ब्रज भाशा और उनका साहित्य’ उनकी अध्ययन”ाीलता के उत्कृश्ट प्रमाण हैं। विद्यापति, उत्तरयोगी, आधुनिक परिवे”ा और नवलेखन, आधुनिक परिवे”ा और अस्तित्ववाद आदि रचनाएँ भी उनकी अध्ययन”ाीलता के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। f”ावप्रसाद जी एक सफल चरनाकार है। उन्होंने दे”ा–विदे”ा के प्राचीन और नवीनमत साहित्य का अध्ययन किया ही था, साथ–साथ इतिहास, धम, संस्कृति, द”ार्न, मनोविज्ञान, गणित आदि विशयों पर उनका अधिक प्रभुत्व था। विज्ञान की उपलब्धियाँ तथा सीमाओं का उन्हें अच्छी तरह परिचय था। बकौल हिमां”ाु जो”ाी कहते हैं ‘‘साहित्य, संस्कृति, द”ार्न हर विशय में उनकी गहरी पैठ थी।’’[6]

संघर्श”ाीलता बचपन से ही f”ावप्रसाद जी के जीवन का प्रर्याय बन गया था। ‘जीवन संघर्श है या संघर्श ही जीवन है’ यह बात उनके जीवन से चरितार्थ होता है। उनके संघर्शों की लंबी दास्तान है। उन्हें पढ़ाई के लिए संघर्श करना पड़ा। जब वे पढ़ाई के लिए बनारस गये तो उस समय उनका परिवार कठिन आर्थिक परिस्थितियों से गुजर रहा था जिसका तनाव उनके मन पर था। ‘मंजुf”ामा’ स्वयं मंजूश्री का साक्षात मृत्यु से संघर्श की कथा है। यह उपन्यास उन्होंने अपनी बेटी मंजुf”ामा की असामयिक मृत्यु होने के बाद लिखा था। अपनी लंबी बिमारी , डॉक्टरों का अमानवीय व्यवहार, किडनी न पा सकने की स्थिति में रोज–रोज हारना, हार कर जीना, फिर इसी कम में दुःखों का गाझिन होते जाना– सबकुछ सहा था f”ावप्रसाद सिंह ने। f”ावप्रसाद जी कहते हैं– ‘‘मृत्यु जीती, मैं हारा। पर मैं संतुश्ट हूँ। इसीलिए कि मैंनें उसे (मंजूश्री) को मृत्यु क मुख में जानें से रोक दिया था। क्या हुआ कि वह तीन साल तक ही जी पायी। यह भी बहुत है। अगर मैंने मृत्यु को एक मिनट के लिए भी रोक दिया तो मैं सफल हूँ। मैं टूट गया तो क्या हुआ , मृत्यु भी तो टूट गयी मेरे लिए।’’[7]

जीवन के हर मोड़ पर संघर्श से टकराना उनकी नियति बन गयी थी। उनके लेखन का प्रण तो संघर्श ही था। रामानंद, f”ावंद्र, आनंद वा”ोक प्रतर्दन, कीरत इन सबों के संघर्श के साथ f”ावप्रसाद थे। चमार, भंगी, डोम, मुसहर, हिजड़ा.... उपेक्षित और बहिश्कृत लोगों के साथ तो लेखक लड़ ही रहे थे। लडना और लड़ते रहना उनकी नियति थी। वे संघर्श से डरनेवाले नहीं थे।

संघर्श"ीलता की पराकाश्ठा ने ि"ावप्रसाद जी को चिंतन"ील प्रवृति का बना दिया था। अनेकानेक विशयों पर निरंतर अध्ययन और उनसबों पर चिंतन उनकी प्रवृति थी। अध्यापक और साहित्यकार इन दोनों भूमिकाओं की नियति एक ही थी– चिंतन। जो भी मिलता पढ़ जाते और पढ़ने के बाद चिंतन करते। कामू सार्त्र आदि से लेकर लोहिया, अरविंद तक पढ़े और उनपर चिंतन किये। राजनीति, साहित्य, समाज के साथ–साथ विज्ञान आदि पर भी चिंतन किया। ि"ावप्रसाद जी के हर एक उपन्यास में एक चिंतन सर्जक के द"र्न होते हैं। 'अलग–अलग वैतरणी' में युवा आक्रो"ा पर चिंतन है। 'गली आगे मुड़ती है' में मध्यकालीन का"ाी पर चिंतन है, 'नीला चाँद' में वैदिककालीन का"ाी पर चिंतन है, 'वै"वानर' में साक्षात मृत्यु पर चिंतन ह तथा 'मंजु"िमा' में ऐसी अनेक विशयों पर चिंतन है।

अध्ययन"ील, संघर्श"ीलता तथा चिंतन"ील प्रवृति वाले डॉ० ि"ावप्रसाद जी हमे"ाा संवेदन"ील रहे। अपनी रचनाओं के माध्यम से उन्होंने समाज के आखिरी छोर पर खड़े गरीबों, किसानों, मजदूरों, नटों, मुसहरों, दलितों आदि की संवेदनाओं को स्वभाविक रूप से अभिव्यक्त करते हैं। उनके मन में एक लेखक या कवि हमे"ाा मौजूद रहा । फलतः उनकी कहानियों, उपन्यासों या निबंधों में कवि की सी संवेदना देखने का मिलती है। यही संवेदना ि"ावप्रसाद जी को उद्विग्न करती है और समाज से जोड़ती भी है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी उन्हें एक पत्र में लिखता है –''इन्हें भी इंतजार है आघोपांत पढ़ गया हूँ, तुमने एक अद्भुत संसार को प्रत्यक्ष कराया है। सुभागी, नन्हों, विहरिया, कजारी, दीनू, कुन्नन मियाँ, सिजोगी, लहरी, जगिया पंडित, धूरेमल आदि सचमुच तुम्हारे इन्तजार में थे। लेखक की यही संवेदन"ीलता ने पटनहिया भाभी, कनिया, रूपवा, सोनवाँ जैसे अद्वितीय पात्र हिन्दी साहित्य को दिये।''[8]

अनेक लोग ि"ावप्रसाद जी को अहंकारी समझते थे और उनसे दूर ही रहते थे लेकिन वास्तव में वे अत्यंत विनम्र थे। वे बाहर से जितने सक्षत लगते थे, अंदर से उतने ही मृदु थे। वे दूसरों की विद्वता का आदर करते थे। श्रीकांत वर्मा हो या केरल के भांकर कुरूप उनकी कविताओं की वे जी भर प्र"ांसा किया करते थे। इसी विनम्रता के कारण उन्होंने अस्तित्ववादी चिंतकों पर समीक्षात्मक लेख लिखे। गुरू हजारीप्रसाद द्विवेदी जी के साथ–साथ वे राहुल सांकृत्यायन, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, मैथिली"ारण गुप्त, बालकुश्ण भार्मा 'नवीन' रामचंद्र वर्मा, भाांतिप्रिय द्विवेदी आदि साहित्यकारों को विनम्रता से नमन करते थे। इसी विनम्रता के कारण उन्होंने राममनोहर लोहिया को गुरू माता, 'अलग–अलग वैतरणी' उपन्यास नागार्जुन, भाम"ोर तथा त्रिलोचन भाास्त्री को भेंट किया और इसी विनम्रता से 'उत्तर योगी' का सृजन हुआ।

अपनी स्पश्टवादिता के कारण ि"ावप्रसाद जी साहित्य, राजनीति, धर्म आदि विशयों पर अपने विचार स्पश्ट रूप से व्यक्त किए हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों तथा ललित निबंधों में अपने विचार बेबाक ढंग से पाठकों के सामने रखा है। वे 'कुहरे में युद्ध' की भ्मिका में लिखते हैं– ''हिंदू – मुस्लिम सांप्रदायिकता ने नींद हराम कर रखी है।''[9] उन्होंने इसपर बड़ी ईमानदारी से लिखा कि इस समस्या पर लिखना कुछ लागों को हिंदूवादी होना लगता है। लेखक को इस बात की चिंता नहीं है क्योंकि वे जानते थे कि लेखक होने का यही दंड होता है। वे प्रयाप्त धैर्यवान थे और उन्हें वि"वास था कि, ''एक दिन सत्य पुकारेगा और तुम्हें ठोस

जमीन पर ले आयेगा।'' हिंदी आलोचना पर उनके स्पश्ट विचार देखने को मिलते हैं। आलोचकों की गुटबाजी के कारण वे स्वयं उपेक्षित रहे। f"ावप्रसाद जी के भाब्दों में, ''आलोचक को सेतु बनाने का कार्य करना चाहिये पर दुर्भाग्य से हिंदी में आलोचक अवसर के अनुसार अपने को बदल लेने की प्रकिया में इतना सोच लेते हैं कि प्रायः आत्मकेंद्रित हो जाते हैं। लगातार एकांगी और रचनाकार के प्रति किया गया व्यवहार उनका उद्धे"य बन गया है। वहाँ मात्र समीक्षा तक सीमित न रहकर लेखक की रचना को तोलकर जहाँ चाहे पहुँचाने का अमर्श ढोने लगता है।''

स्पश्टवादिता के कारण वे प्रजातंत्र को 'मृग मरीचिका' कहते हैं । वे स्वतंत्रता के बाद के भारतीय इतिहास को एक ही भीर्शक देते हैं – भार्मनाक भिक्षाकाल । डॉ० f"ावप्रसाद अपनी दो टूक बात कह देने के लिए प्रसिद्ध थे– ''न ऊधो का लेना और न माधो को देना'' उनके व्यक्त्वि का स्वभाव है। राश्ट्र के उत्थान और पतन में साहित्य के योगदान पर उनके विचार अत्यंत स्पश्ट है। ''साहित्य मेरी कामों को जिलाता है, समाज को पतित भी करता होगा, पर उनके अनुसार ये सब युगालते साहित्यकार बनाते हैं। साहित्यकार आम आदमी के साथ यदि खड़ा हाकर उसकी जिंदगी का सही साक्ष्य भर द सके, उसकी रचनाएँ उसके परिवे"ा और समय का दस्तावेज बन सके, तो भी बहुत है।''[10]

डॉ० f"ावप्रसाद सिंह साहित्य, राजनीति, धर्म आदि विशयों पर अपने विचार स्पश्ट रूप से तथा प्रमाण के साथ व्यक्त किए हैं । उनका संपूर्ण जीवन प्रमाणिकता का उदाहरण है। उन्हें सत्य से प्रेम और झूठ से काफी नफरत थी। वे न तो किसी की निंदा और न ही किसी की झूठी प्र"ांसा करते थे। गुटबाजों से हमे"ाा दूर ही रहते थे। ताक–झाँक और दिखावे से भी नफरत थी। जो उनके दिल में होता था वही कलम के माध्यम से पूरी निश्ठा एवं ईमानदारी के साथ भाब्दबद्ध होता था। जीवन हो या साहित्य हो दोनों में उनके आद"ार्ा एक थे और निश्ठा भी एक थी। अपने एक साक्षात्कार के दौरान उन्होंनें कहा था– ''उन दिनों (जब रचना यात्रा आरंभ हुई थी) मेरे ऊपर प्रसाद का प्रभाव बहुत ज्यादा था... तब उपन्यास 'रंगभूमि' अच्छा लगा था। 'निर्मला' और 'कर्मभूमि' मुझे पसंद नहीं आये। 'गोदान' तो बहुत बाद में पढ़ा। एक बात, मैं तहेदिल से प्रमचंद को पसंद करता था। सपाट भाशा में बहुत बड़ा सामाजिक कथ्य कह जाते थे। प्रेमचंद से ज्यादा भारतचंद्र पसंद थे। जिन्हें पूरा पढ़ा उस समय।''[11]

राममनोहर लोहिया उनके आद"ार्ा का प्रमुख स्तंभ रहा जिस कारण से भाोध कार्य हो, सृजन कर्म हो, आलोचना हो या अध्यापकीय जीवन, उनमें कभी अप्रमाणिकता का प्रवे"ा नहीं हुआ। कभी किसी के दबाव में आकर कुछ नहीं लिखा। उन्हें उनके ऐतिहासिक उपन्यासों को आधार पर मुस्तिमविरोधी मान लिया गया। '"ौलूश' पढ़कर उन्हें एक ओर ठाकुर कोसते हैं तो दूसरी ओर ब्राहमण। कुछ सवर्ण पाठकों ने उन्हें ' f"ावप्रसाद हरिजन' तक कहा। अपने आचार और विचार की प्रामाणिकता के कारण वे अपने आप में एक आद"ार्ा के रूप में पहचाने जाते हं।

डॉ० ि"ावप्रसाद सिंह आस्तिक थे और ई"वर में उनकी श्रद्धा भी थी लेकिन वे मानते थे कि आस्था एवं श्रद्धा का यह अर्थ नहीं कि हम भीड़ में खो जाये। उनको ऐसी भीड़ कभी पसंद नहीं आयी। ई"वर में उनकी आस्था थी लेकिन अपनी आस्था का प्रद"ान कभी नहीं किया। उन्हें प्रद"ान से सख्त नफरत थी। मूर्तिपूजा के संदर्भ में उनके विचार बिल्कुल स्पश्ट थे । उनका मानना था कि मूर्ति इसलिए नहीं महत्वपूर्ण होती है कि उसमें भाक्ति होती है, बल्कि महत्वपूर्ण बात तब हो जाती है जब उसे हजारों–हजार लोग पूजने लगते हैं, भी"ा नवान लगते हैं। ि"ावप्रसाद जी कहते थे– ''मैं आज अपने आपको नास्तिक कहता हूँ, पर मूर्तिपूजा का विरोध नहीं करता।''[12]

समाजिक प्रतिबद्धता उनकी लेखन धर्मिता रही है। कुछ लेखक राजनीतिक पार्टी के प्रति इस प्रकार प्रतिबद्ध होते हैं कि वे सही–गलत का निर्णय ही नहीं कर पाते हैं। अंध स्वीकृति ही उनका धर्म बन जाता है। ऐसे लेखक प्रतिबद्ध नहीं पक्षधर कहलाते हैं। लेकिन ि"ावप्रसाद जी प्रतिबद्धता के पक्षधरता से अलग करते हैं। वे मानवता के प्रति प्रतिबद्ध थे। एक भेंटवार्ता में प्रतिबद्धता पर पूछे गये प्र"न का जवाब देते हुए उन्होंने कहा था–''प्रतिबद्ध बुरी बात नहीं, सोचने की बात यह है कि वह कहाँ और किससे प्रतिबद्ध है। नैतिक मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता तो आव"यक ही है।''[13]

का"ाी से ि"ावप्रसाद जी को बेहद लगाव था। उनके जीवन की एक ही इच्छा थी कि का"ाी में ही उनके जीवन की इति हो। उन्हें का"ाी के बाहर से काफी प्रस्ताव–प्रलोभन मिला, पर ''ऊँची कुर्सीयों पर बैठने के सादर आमंत्रण को ि"ावप्रसाद जी ने मात्र इसीलिए नकार दिया कि वे का"ाी के बाहर थी।'' उनके लिए मृत्यु तो जैसे एक प्रेमिका के समान थी। मृत्युरूपी प्रेमिका की तो वे प्रतीक्षा कर रहे थे। ''नि"चत ही मृत्यु का त्योहार मेरे जीवन की पूर्णता बनेगा। मैं उसकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।''[14]

ि"ावप्रसाद जी की अंतिम बिमारी में उनके पुत्र नरेंद्र ने उन्हें राममनोहर लोहिया अस्पताल में भर्ती किया तो बड़े बैचेन हुए। वे का"ाी लौटना चाहते थे। अतः वे नरेंद्र स कहते थे –''कोई का"ाी छोड़कर और कहीं क्यों मरना चाहेगा। यह भारीर तो का"ाी का ही है।'' उनकी आंतरिक इच्छा को नरेंद्र ने समझा और 7 सितंबर 1998 को बनारस ले आया। 28 सितंबर 1998 को सुबह चार बजे उन्होंने सर सुंदरलाल अस्पताल में सबसे विदा ली, बहुत ही कतार्थता के साथ। इस तरह एक महान साहित्यकार ने अंतिम साँस का"ाी में ही ली।

डॉ० ि"ावप्रसाद सिंह बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने उपन्यासों, नाट्यलेखन, समीक्षा, वैचारिक लेखन, जीवनी, निबंध, आदि विविध गद्य विधाओं में लिखकर हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। उनका सृजन"ाील व्यक्तित्व हमारे सामने झलकता है। भारत सरकार की नई ि"ाक्षा नीति के अंतर्गत यू.जी.सी. ने 1986 में उन्हें हिन्दी पाठ्यक्रम विकास केंद्र का समन्वयक नियुक्त किया था। इस योजना के अंतर्गत उनके द्वारा प्रस्तुत हिन्दी पाठ्यक्रम को यू.जी.सी. ने 1989 में स्वीकृति प्रदान की थी और दे"ा के समस्त वि"वविद्यालयों के एिल जारी किया था। वे रेलवे बोर्ड के राजभाशा विभाग के मान्य सदस्य भी रहे और

साहित्य अकादमी, बिरला फाउँडे"ान, उत्तर प्रदे"ा हिन्दी संस्थान जैसे अनेक संस्थाओं से किसी नह किसी रूप में संबद्ध रहे। संक्षेप में उन्हें प्राप्त होनेवाले मान–सम्मान एवं पुरस्कार निम्नलिखित है–

1.भारतीय साहित्य अकादमी पुरस्कार – नीला चाँद
2.भाारदा सम्मान – नीला चाँद
3.व्यास सम्मान – नीला चाँद
4.आचार्य रामचंद्र भाुक्ल पुरस्कार – कस्तुरी मृग
5.देव पुरस्कार – अलग–अलग वैतरणी
6.प्रेमचंद पुरस्कार – गली आगे मुड़ती है
7.मदनमोहन मालवीय पुरस्कार– रसरतन के पाठ संपादन पर
8.बालकृश्ण भार्मा 'नवीन' पुरस्कार – उत्तरयोगी
9.हरीजी डालमिया पुरस्कार – सूरपूर्व ब्रज भाशा और उसका साहित्य
10. उत्तर प्रदे"ा का हिंदी संस्था सम्मान

## संदर्भ सूची

1. सिंह, डॉ० कामे"वर, व्यक्तित्व और रचना धर्मिता, पृश्ठ– 13
2. वही, पृश्ठ– 13
3. साहित्य अमृत, नवंबर 1998, पृश्ठ– 25
4. गँवई गंध गुलाब, पृश्ठ– 128
5. सरिका, 1 फरवरी 1980, पृश्ठ– 15
6. कथादे"ा नवंबर 1998, पृश्ठ– 19
7. सिंह, f"ावप्रसाद, मंजू"ामा, कठिन है डगर पनघट की पृश्ठ– VII
8. संपादक प्रेमचंद जैन, बीहड़ पथ के यात्री, पृश्ठ– 436
9. अमृता f"ावप्रसाद सिंह– भूमिका, कहता हूँ ताकि सदन रहे से
10. पाण्ड्य भाf"ाभूशण भींता"ा, f"ावप्रसाद सिंहः सृश्टा और सृश्टि, पृश्ठ–20
11. मेरे साक्षात्कार– उमे"ा प्रसाद सिंह व संजय गौतम से बातचीत, पृश्ठ– 20
12. मेरे साक्षात्कार, f"ावप्रसाद सिंह, पृश्ठ– 69
13. आजकल, मार्च 1993, डॉ० जयसिंह प्रदीप द्वारा ली गयी भेंटवार्ता से, पृश्ठ– 36
14. f"ावप्रसाद सिंह के उपन्यासों का अनु"ीलन– डॉ० राजेन्द्र खैरनार, पृश्ठ– 26